'जैन तर्कभाषा'

ग्रन्थकार

प्रस्तुत ग्रंथ जैन तर्कभाषा के प्रणेता उपाध्याय श्रीमान् यशोविजय हैं। उनके जीवन के बारे में सत्य, अर्ध सत्य अनेक बातें प्रचलित थीं, पर जब से उन्हीं के समकालीन गणी कान्तिविजयजी का बनाया 'सुजशवेली भास' पूरा प्राप्त हुआ, जो बिलकुल विश्वसनीय है, तब से उनके जीवन की खरी-खरी बातें बिलकुल स्पष्ट हो गईं। वह 'भास' तत्कालीन गुजराती भाषा में पद्य बंध है, जिसका आधुनिक गुजराती में सटिप्पण सार-विवेचन प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत मोहनलाल द० देसाई ने लिखा है। उसके आधार से यहाँ उपाध्यायजी का जीवन संक्षेप में दिया जाता है।

उपाध्यायजी का जन्मस्थान गुजरात में कलोल [बी. बी. एण्ड सी. आई. रेलवे] के पास 'कनोडु' नामक गांव है जो अभी मौजूद है। उस गांव में नारायण नाम का व्यापारी था जिसकी धर्मपत्नी सोभागदे थी। उस दम्पती के जसवंत और पद्मसिंह दो कुमार थे। कभी अकबर प्रतिबोधक प्रसिद्ध जैनाचार्य हीरविजयसूरि की शिष्यपरंपरा में होने वाले पंडितवर्य श्रीनय-विजय पाटण के समीपवर्ती 'कुणगेर' नामक गांव से विहार करते हुए उस 'कनोडु' नामक गांव में पधारे। उनके प्रतिबोध से उक्त दोनों कुमार अपने माता-पिता की सम्मति से उनके साथ हो लिये और दोनों ने पाटण में पं० नय-विजयजी के पास ही वि० सं० १६८८ में दीक्षा ली, और उसी साल श्रीविजयदेव सूरि के हाथ से उनकी बड़ी दीक्षा भी हुई। ठीक ज्ञात् नहीं कि दीक्षा के समय उनकी उम्र क्या होगी, पर संभवतः वे दस-बारह वर्ष से कम उम्र के न रहे होंगे। दीक्षा के समय 'जसवंत' का 'यशोविजय' और 'पद्मसिंह' का 'पद्मविजय' नाम रखा गया। उसी पद्मविजय को उपाध्यायजी अपनी कृति के अंत में सहोदर रूप से स्मरण करते हैं।

सं० १६९९ में अहमदाबाद शहर में संघसमक्ष पं० यशोविजयजी ने आठ अवधान किये। इससे प्रभावित होकर वहाँ के एक धनजी सूरा नामक प्रसिद्ध व्यापारी ने गुरु श्रीनयविजयजी को विनति की कि पण्डित यशोविजयजी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काशी जैसे स्थान में पढ़ाकर दूसरा हेमचन्द्र तैयार कीजिए। उस सेठ ने इसके वास्ते दो हजार चांदी के दीनार खर्च करना मंजूर किया और हुंडी लिख दी। गुरु नयविजयजी शिष्य यशोविजय आदि सहित काशी में आए और उन्हें वहां के प्रसिद्ध किसी भट्टाचार्य के पास न्याय आदि दर्शनों का तीन वर्ष तक दक्षिणा-दान पूर्वक अभ्यास कराया। काशी में ही बाद में, किसी विद्वान् पर विजय पाने के बाद पं० यशोविजयजी को 'न्यायविशारद' की पदवी मिली। उन्हें 'न्यायाचार्य' पद भी मिला था, ऐसी प्रसिद्ध रही। पर इसका निर्देश 'सुजशवेली भास' में नहीं है।

काशी के बाद उन्होंने आगरा में रहकर चार वर्ष तक न्यायशास्त्र का विशेष अभ्यास व चिंतन किया। इसके बाद वे अहमदाबाद पहुँचे, जहाँ उन्होंने औरंगजेब के महोबत खां नामक गुजरात के सूबे के अध्यक्ष के समक्ष अठारह अवधान किये। इस विद्वत्ता और कुशलता से आकृष्ट होकर सभी ने पं० यशोविजयजी को 'उपाध्याय' पद के योग्य समझा। श्री विजयदेव सूरि के शिष्य श्रीविजयप्रभ सूरि ने उन्हें सं० १७१८ में वाचक—उपाध्याय पद समर्पण किया।

वि० सं० १७४३ में डभोई गांव, जो बड़ौदा स्टेट में अभी मौजूद है, उसमें उपाध्यायजी का स्वर्गवास हुआ, जहाँ उनकी पादुका वि० सं० १७४५ में प्रतिष्ठित की हुई अभी विद्यमान है।

उपाध्यायजी के शिष्य-परिवार का उल्लेख 'सुजश वेली' में तो नहीं है, पर उनके तत्त्व विजय आदि शिष्य-प्रशिष्यों का पता अन्य साधनों से चलता है, जिसके वास्ते 'जैन गुर्जर कविओं' भाग २, पृष्ठ २७ देखिए।

उपाध्यायजी के बाह्य जीवन की स्थूल घटनाओं का जो संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया है, उनमें दो घटनाएँ खास मार्के की हैं जिनके कारण उपाध्यायजी के आंतरिक जीवन का स्रोत यहां तक अन्तर्मुख होकर विकसित हुआ, कि जिसके बल पर वे भारतीय साहित्य में और खासकर जैन परंपरा में अमर हो गए। उनमें से पहली घटना अभ्यास के वास्ते काशी जाने की है, और दूसरी न्याय आदि दर्शनों का मौलिक अभ्यास करने की है। उपाध्यायजी कितने ही बुद्धि या प्रतिभासंपन्न क्यों न होते, उनके वास्ते गुजरात आदि में अध्ययन की सामग्री कितनी ही क्यों न जुटाई जाती, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि वे अगर काशी में न आते, तो उनका शास्त्रीय व दार्शनिक ज्ञान, जैसा उनके ग्रन्थों में पाया जाता है, संभव न होता। काशी में जाकर भी वे उस समय तक विकसित न्यायशास्त्र—खास करके नवीन न्याय-शास्त्र का पूरे बल से अध्ययन न करते तो उन्होंने जैन परंपरा को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और तद्द्वारा भारतीय साहित्य को जैन विद्वान् की हैसियत से जो अपूर्व भेंट दी है, वह कभी संभव न होती।

दसवीं शताब्दी से नवीन न्याय के विकास के साथ ही समग्र वैदिक दर्शनों में ही नहीं, बल्कि समग्र वैदिक साहित्य में सूक्ष्म विश्लेषण और तर्क की एक नई दिशा प्रारंभ हुई, और उत्तरोत्तर अधिक से अधिक विकास होता चला जो अभी तक हो ही रहा है। इस नवीन न्याय कृत नव्य युग में उपाध्यायजी के पहिले भी अनेक श्वेताम्बर दिगम्बर विद्वान् हुए, जो बुद्धि-प्रतिभा संपन्न होने के अलावा जीवन भर शास्त्रयोगी भी रहे। फिर भी हम देखते हैं कि उपाध्यायजी के पूर्ववर्ती किसी जैन विद्वान् ने जैन मन्तव्यों का उतना सतर्क दार्शनिक विश्लेषण व प्रतिपादन नहीं किया, जितना उपाध्यायजी ने किया है। इस अंतर का कारण उपाध्यायजी के काशीगमन में और नव्य न्यायशास्त्र के गंभीर अध्ययन में ही है। नवीन न्यायशास्त्र के अभ्यास से और तन्मूलक सभी तत्कालीन वैदिक दर्शनों के अभ्यास से उपाध्यायजी का सहज बुद्धि-प्रतिभा संस्कार इतना विकसित और समृद्ध हुआ कि फिर उसमें से अनेक शास्त्रों का निर्माण होने लगा। उपाध्यायजी के ग्रंथों के निर्माण का निश्चित स्थान व समय देना अभी संभव नहीं। फिर भी इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि उन्होंने अन्य जैन साधुओं की तरह मन्दिर निर्माण, मूर्ति प्रतिष्ठा, संघ निकालना आदि बहिर्मुख धर्म कार्यों में अपना मनोयोग न लगाकर अपना सारा जीवन जहां वे गये और जहां वे रहे, वहीं एकमात्र शास्त्रों के चिन्तन तथा न्याय शास्त्रों के निर्माण में लगा दिया।

उपाध्यायजी के ग्रन्थों की सब प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। कुछ तो उपलब्ध हैं, पर अधूरी। कुछ बिलकुल अनुपलब्ध हैं। फिर भी जो पूर्ण उपलब्ध हैं, वे ही किसी प्रखर बुद्धिशाली और प्रबल पुरुषार्थी के आजीवन अभ्यास के वास्ते पर्याप्त हैं। उनकी लभ्य, अलभ्य और अपूर्ण लभ्य कृतियों को अभी तक की यादी देखने से ही यहां संक्षेप में किया जानेवाला उन कृतियों का सामान्य वर्गीकरण व मूल्यांकन पाठकों के ध्यान में आ सकेगा।

उपाध्यायजी की कृतियां संस्कृत, प्राकृत, गुजराती और हिन्दी-मारवाड़ी इन चार भाषाओं में गद्यबद्ध, पद्यबद्ध और गद्य-पद्यबद्ध हैं। दार्शनिक ज्ञान का असली व व्यापक खजाना संस्कृत भाषा में होने से तथा उसके द्वारा ही सकल देश के सभी विद्वानों के निकट अपने विचार उपस्थित करने का सम्भव होने से उपाध्यायजी ने संस्कृत में तो लिखा ही पर उन्होंने अपनी जैन परम्परा की मूलभूत प्राकृत भाषा को गौण न समझा। इसी से उन्होंने प्राकृत में भी रचनाएँ की। संस्कृत-प्राकृत नहीं जाननेवाले और कम जानने वालों तक अपने विचार पहुँचा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने के लिये उन्होंने तत्कालीन गुजराती भाषा में भी विविध रचनायें की। मौका पाकर कभी उन्होंने हिन्दी मारवाड़ी का भी आश्रय लिया।

विषयदृष्टि से उपाध्यायजी का साहित्य सामान्य रूप से आगमिक, तार्किक दो प्रकार का होने पर भी विशेष रूप से अनेक विषयावलंबी है। उन्होंने कर्म-तत्त्व, आचार, चरित्र आदि अनेक आगमिक विषयों पर आगमिक शैली से भी लिखा है और प्रमाण, प्रमेय, नय, मंगल, मुक्ति, आत्मा, योग आदि अनेक तार्किक विषयों पर भी तार्किक शैली में खासकर नव्य तार्किक शैली से लिखा है। व्याकरण, काव्य, छंद, अलंकार, दर्शन आदि सभी तत्काल प्रसिद्ध शास्त्रीय विषयों पर उन्होंने कुछ-न-कुछ, अति महत्त्व का लिखा है।

शैली की दृष्टि से उनकी कृतियाँ खण्डनात्मक भी है, प्रतिपदनात्मक भी हैं और समन्वयात्मक भी। जब वे खंडन करते हैं तब पूरी गहराई तक पहुँचते हैं। प्रतिपादन उनका सूक्ष्म और विशद है। वे जब योगशास्त्र और गीता आदि के तत्त्वों का जैन मन्तव्य के साथ समन्वय करते हैं तब उनके गंभीर चिंतन का और आध्यात्मिक भाव का पता चलता है। उनकी अनेक कृतियां किसी अन्य के ग्रन्थ की व्याख्या न होकर मूल, टीका या दोनों रूप से स्वतन्त्र ही हैं, जब कि अनेक कृतियां प्रसिद्ध पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों की व्याख्यारूप हैं। उपाध्यायजी थे पक्के जैन और श्वेताम्बर फिर भी विद्याविषयक उनकी दृष्टि इतनी विशाल थी कि वह अपने संप्रदायमात्र में समा न सकी, अतएव उन्होंने पातंजल योगसूत्र के ऊपर भी लिखा और अपनी तीव्र समालोचना की लक्ष्य—दिगम्बर परंपरा के सूक्ष्म प्रज्ञ तार्किक प्रवर विद्यानन्द के कठिनतर अष्टसहस्री नामक ग्रंथ के ऊपर कठिनतम व्याख्या भी लिखी।

गुजराती और हिन्दी-मारवाड़ी में लिखी हुई उनकी अनेक कृतियों का थोड़ा बहुत वाचन, पठन व प्रचार पहिले से ही रहा है, परन्तु उनकी संस्कृत-प्राकृत कृतियों के अध्ययन-अध्यापन का नामोनिशान भी उनके जीवन काल से लेकर ३० वर्ष पहले तक देखने में नहीं आया। यही सबब है कि ढाई सौ वर्ष जितने कम और खास उपद्रवों से मुक्त इस सुरक्षित समय में भी उनकी सब कृतियां सुरक्षित न रहीं। पठन-पाठन न होने से उनकी कृतियों के ऊपर टीका टिप्पणी लिखे जाने का तो संभव रहा ही नहीं, पर उनकी नकलें भी ठीक-ठीक प्रमाण में न होने पाईं। कुछ कृतियां तो ऐसी भी मिल रही हैं, जिनकी सिर्फ एक-एक प्रति रही। संभव है ऐसी ही एक-एक नकल वाली अनेक कृतियां या तो लुप्त हो गईं या किसी अज्ञात स्थानों में तितर बितर हो गई हों। जो कुछ हो, पर उपाध्यायजी का जितना साहित्य लभ्य है, उतने मात्र का ठीक-ठीक पूरी तैयारी के साथ अध्ययन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया जाए, तो जैन परंपरा के चारों अनुयोग तथा आगमिक, तार्किक कोई विषय अज्ञात न रहेंगे।

उदयन और गंगेश जैसे मैथिल तार्किक पुंगवों के द्वारा जो नव्य तर्कशास्त्र का बीजारोपण व विकास प्रारंभ हुआ, और जिसका व्यापक प्रभाव व्याकरण, साहित्य, छंद, विविध दर्शन और धर्मशास्त्र पर पड़ा, और खूब फैला उस विकास से वंचित सिर्फ दो सम्प्रदाय का साहित्य रहा। जिनमें से बौद्ध साहित्य की उस त्रुटि की पूर्ति का तो संभव ही न रहा था, क्योंकि बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी के बाद भारतवर्ष में बौद्ध-विद्वानों की परंपरा नामगात्र को भी न रही, इसलिए वह त्रुटि इतनी नहीं अखरती जितनी जैन साहित्य की वह त्रुटि। क्योंकि जैन संप्रदाय के सैकड़ों ही नहीं, बल्कि हजारों साधन संपन्न त्यागी व कुछ गृहस्थ भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों में मौजूद रहे, जिनका मुख्य व जीवनव्यापी ध्येय शास्त्र चिंतन के सिवाय और कुछ कहा ही नहीं जा सकता। इस जैन साहित्य की कमी को दूर करने और अकेले हाथ से दूर करने का उज्जवल व स्थायी यश अगर किसी जैन विद्वान् को है, तो वह उपाध्याय यशोविजयजी को ही है।

ग्रन्थ

प्रस्तुत ग्रन्थ के जैन तर्कभाषा इस नामकरण का तथा उसे रचने की कामना उत्पन्न होने का, उसके विभाग, प्रतिपाद्य विषय का चुनाव आदि का बोधप्रद व मनोरञ्जक इतिहास है जो अवश्य ज्ञातव्य है।

जहाँ तक मालूम है इससे पता चलता है कि प्राचीन समय में तर्कप्रधान दर्शन ग्रन्थों के चाहे वे वैदिक हों, बौद्ध हों या जैन हों – नाम न्याय पद युक्त हुआ करते थे। जैसे कि न्यायसूत्र, न्यायभाष्य, न्यायवार्तिक, न्यायसार, न्यायमंजरी, न्यायमुख, न्यायावतार आदि। अगर प्रो० ट्यूचीका रखा हुआ 'तर्कशास्त्र'[1] यह नाम असल में सच्चा ही है या प्रमाण समुच्चय वृत्ति में निर्दिष्ट 'तर्कशास्त्र' नाम सही है, तो उस प्राचीन समय में पाये जाने वाले न्यायशब्द युक्त नामों की परम्परा का यह एक ही अपवाद है जिसमें कि न्याय शब्द के बदले तर्कशब्द हो। ऐसी परम्परा के होते हुए भी न्याय शब्द के स्थान में 'तर्क' शब्द लगाकर तर्क भाषा नाम रखनेवाले और उस नाम से धर्मकीर्तिकृत न्यायबिन्दु के पदार्थों पर ही एक प्रकरण लिखनेवाले बौद्ध विद्वान् मोक्षाकर हैं जो बारहवीं शताब्दी के माने जाते हैं। मोक्षाकर की इस तर्कभाषा कृति का प्रभाव वैदिक विद्वान् केशव मिश्र पर पड़ा हुआ जान पड़ता है, जिससे उन्होंने

१ Pre-Dignaga Budhist logic गत 'तर्कशास्त्र' नामक ग्रंथ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैदिक परंपरानुसारी अक्षपाद के न्याय-सूत्र का अवलंबन लेकर अपना तर्कभाषा ग्रंथ तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में रचा। मोक्षाकर का जगत्तल बौद्ध विहार केशवमिश्र की मिथिला से बहुत दूर न होगा ऐसा जान पड़ता है। उपाध्याय यशोविजयजी ने बौद्ध विद्वान् की दोनों तर्कभाषाओं को देखा, तब उनकी भी इच्छा हुई कि एक ऐसी तर्कभाषा लिखी जानी चाहिए, जिसमें जैन मन्तव्यों का वर्णन हो। इसी इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ रचा और उसका केवल तर्क भाषा यह नाम न रख कर 'जैन तर्कभाषा' ऐसा नाम रखा। इसमें कोई संदेह नहीं, कि उपाध्यायजी की जैन तर्कभाषा रचने की कल्पना का मूल उक्त दो तर्क भाषाओं के अवलोकन में है। मोक्षाकरीय तर्कभाषा की प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति पाटण के भण्डार में है जिससे जाना जा सकता है कि मोक्षाकरीय तर्कभाषा का जैन भंडार में संग्रह तो उपाध्यायजी के पहिले ही हुआ होगा पर केशवमिश्रीय तर्कभाषा के जैन भंडार में संगृहीत होने के विषय में कुछ भार पूर्वक नहीं कहा जा सकता। संभव है जैन भण्डार में उसका संग्रह सब से पहले उपाध्यायजी ने ही किया हो, क्योंकि इसकी भी विविध टीकायुक्त अनेक प्रतियाँ पाटण आदि अनेक स्थानों के जैन साहित्य संग्रह में हैं।

मोक्षाकरीय तर्क भाषा तीन परिच्छेदों में विभक्त है, जैसा कि उसका आधार भूत न्यायबिंदु भी है। केशवमिश्रीय तर्क भाषा में ऐसे परिच्छेद विभाग नहीं हैं। अतएव उपाध्यायजी की जैन तर्क भाषा के तीन परिच्छेद करने की कल्पना का आधार मोक्षाकरीय तर्क भाषा है ऐसा कहना असंगत न होगा। जैन तर्क भाषा को रचने की, उसके नामकरण की और उसके विभाग की कल्पना का इतिहास थोड़ा बहुत ज्ञात हुआ। पर अब प्रश्न यह है कि उन्होंने अपने ग्रन्थ का जो प्रतिपाद्य विषय चुना और उसे प्रत्येक परिच्छेद में विभाजित किया, उसका आधार कोई उनके सामने था या उन्होंने अपने आप ही विषय की पसंदगी की और उसका परिच्छेद अनुसार विभाजन भी किया? इस प्रश्न का उत्तर हमें भट्टारक अकलंक के लघीयस्त्रय के अवलोकन से मिलता है। उनका लघीयस्त्रय जो मूल पद्यबद्ध है और स्वोपज्ञविवरणयुक्त है, उसके मुख्यतया प्रतिपाद्य विषय तीन हैं, प्रमाण, नय और निक्षेप। उन्हीं तीन विषयों को लेकर न्याय-प्रस्थापक अकलंक ने तीन विभाग में लघीयस्त्रय को रचा जो तीन प्रवेशों में विभाजित है। बौद्ध-वैदिक दो तर्क भाषाओं के अनुकरण रूप से जैन तर्कभाषा बनाने की उपाध्यायजी की इच्छा हुई थी ही, पर उन्हें प्रतिपाद्य विषय की पसंदगी तथा उसके विभाग के वास्ते अकलंक की कृति मिल गई जिससे उनकी ग्रन्थ निर्माण योजना ठीक बन गई। उपाध्यायजी ने देखा कि लघीयस्त्रय में प्रमाण, नय और निक्षेप का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णन है, पर वह प्राचीन होने से विकसित युग के वास्ते पर्याप्त नहीं है। इसी तरह शायद उन्होंने यह भी सोचा हो कि दिगम्बराचार्य कृत लघीयस्त्रय जैसा, पर नवयुग के अनुकूल विशेषों से युक्त श्वेताम्बर परंपरा का भी एक ग्रंथ होना चाहिए। इसी इच्छा से प्रेरित होकर नामकरण आदि में मोक्षाकर आदि का अनुसरण करते हुए भी उन्होंने विषय की पसंदगी में तथा उसके विभाजन में जैनाचार्य अकलंक का ही अनुसरण किया।

उपाध्यायजी के पूर्ववर्ती श्वेताम्बर-दिगम्बर अनेक आचार्यों के तर्क विषयक सूत्र व प्रकरण ग्रन्थ हैं पर अकलंक के लघीयस्त्रय के सिवाय ऐसा कोई तर्क विषयक ग्रंथ नहीं है, जिसमें प्रमाण, नय और निक्षेप तीनों का तार्किक शैली से एकसाथ निरूपण हो। अतएव उपाध्यायजी की विषय-पसंदगी का आधार लघीयस्त्रय ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं रहता। इसके सिवाय उपाध्यायजी की प्रस्तुत कृति में लघीयस्त्रय के अनेक वाक्य ज्यों के त्यों है जो उसके आधारत्व के अनुमान को और भी पुष्ट करते हैं।

बाह्यस्वरूप का थोड़ासा इतिहास जानने के बाद आंतरिक स्वरूप का भी ऐतिहासिक वर्णन आवश्यक है। जैन तर्क भाषा के विषयनिरूपण के मुख्य आधार-भूत दो ग्रंथ हैं—सटीक विशेषावश्यक भाष्य और सटीक प्रमाणनयतत्वालोक। इसी तरह इसके निरूपण में मुख्यतया आधार भूत दो न्याय ग्रंथ भी हैं—कुसुमांजलि और चिंतामणि। इसके अलावा विषय निरूपण में दिगम्बरीय न्यायदीपिका का भी थोड़ा सा साक्षात् उपयोग अवश्य हुआ है। जैन तर्क भाषा के नय निरूपण आदि के साथ लघीयस्त्रय और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक आदि का शब्दशः सादृश्य अधिक होने से यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि इसमें लघीयस्त्रय और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक का साक्षात् उपयोग क्यों नहीं मानते। पर इसका जवाब यह है कि उपाध्यायजी ने जैन तर्क भाषा के विषय निरूपण में वस्तुतः सटीक प्रमाणनयतत्वालोक का तार्किक ग्रंथ रूप से साक्षात् उपयोग किया है। लघीयस्त्रय, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक आदि दिगम्बरीय ग्रन्थों के आधार से सटीक प्रमाणनयतत्त्वालोक की रचना की जाने के कारण जैन तर्क भाषा के साथ लघीयस्त्रय और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक का शब्दसादृश्य सटीक प्रमाणनयतत्त्वालोक के द्वारा ही आया है, साक्षात् नहीं।

मोक्षाकर ने धर्मकीर्ति के न्यायबिंदु को आधारभूत रखकर उसके कतिपय सूत्रों की व्याख्यारूप में थोड़ा बहुत अन्य अन्य शास्त्रार्थीय विषय पूर्ववर्ती बौद्ध ग्रन्थों में से लेकर अपनी नातिसंक्षिप्त नातिविस्तृत ऐसी पठनोपयोगी तर्क भाषा लिखी। केशवमिश्र ने भी अक्षपाद के प्रथम सूत्र को आधार रखकर उसके निरूपण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में संक्षेप रूप से नैयायिक सम्मत सोलह पदार्थ और वैशेषिक सम्मत सात पदार्थों का विवेचन किया। दोनों ने अपने-अपने मंतव्य को सिद्ध करते हुए तत्कालीन विरोधी मन्तव्यों का भी जहां-तहां खण्डन किया है। उपाध्यायजी ने भी इसी सरणी का अवलंबन करके जैन तर्क भाषा रची। उन्होंने मुख्यतया प्रमाणनय-तत्त्वालोक के सूत्रों को ही जहां संभव है आधार बनाकर उनकी व्याख्या अपने ढंग से की है। व्याख्या में खासकर पंचज्ञान निरूपण के प्रसंग में सटीक विशेषावश्यक भाष्य का ही अवलंबन है। बाकी के प्रमाण और नयनिरूपण में प्रमाण-नयतत्त्वालोक की व्याख्या—रत्नाकर का अवलंबन है अथवा यों कहना चाहिए कि पंचज्ञान और निक्षेप की चर्चा तो विशेषावश्यक भाष्य और उसकी वृत्ति का संक्षेपमात्र है और परोक्षप्रमाणों की तथा नयों की चर्चा प्रमाणनयतत्त्वालोक की व्याख्या—रत्नाकर का संक्षेप है। उपाध्यायजी जैसे प्राचीन नवीन सकल दर्शन के बहुश्रुत विद्वान् की कृति में कितना ही संक्षेप क्यों न हो, पर उसमें पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष रूप से किंवा वस्तु विश्लेषण रूप से शास्त्रीय विचारों के अनेक रंग पूरे जाने के कारण यह संक्षिप्त ग्रन्थ भी एक महत्त्व की कृति बन गया है। वस्तुतः जैनतर्क भाषा का यह आगमिक तथा तार्किक पूर्ववर्ती जैन प्रमेयों का किसी हद तक नव्यन्याय की परिभाषा में विश्लेषण है तथा उनका एक जगह संग्रह रूप से संक्षिप्त पर विशद वर्णन मात्र है।

प्रमाण और नय की विचार परंपरा श्वेतांबरीय ग्रंथों में समान है, पर निक्षेपों की चर्चा परम्परा उतनी समान नहीं। लघीयस्त्रय में जो निक्षेप निरूपण है और उसकी विस्तृत व्याख्या न्यायकुमुद चन्द्र में जो वर्णन है, वह विशेषावश्यक भाष्य की निक्षेप चर्चा से इतना भिन्न अवश्य है जिससे यह कहा जा सके कि तत्त्व में भेद न होने पर भी निक्षेपों की चर्चा दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों परम्परा में किसी अंश में भिन्न रूप से पुष्ट हुई जैसा कि जीवकांड और चौथे कर्मग्रन्थ के विषय के बारे में कहा जा सकता है। उपाध्यायजी ने जैन तर्क भाषा के बाह्य रूप की रचना में लघीयस्त्रय का अवलंबन किया जान पड़ता है, फिर भी उन्होंने अपनी निक्षेप चर्चा तो पूर्णतया विशेषावश्यक भाष्य के आधार से ही की है।

ई० १९३९] [जैन तर्कभाषा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org